P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

वैदिक साम तथा लौकिक गाान्धर्व स्वरों का अध्ययन

पूजा देवी
व्याख्याता,
संगीत विभाग,
जी0एल0डी0एम0
स्नात्कोत्तर
कॉलेज, हीरानगर, भारत

शिवानी रैना
व्याख्याता,
संगीत विभाग,
जी0एल0डी0एम0 स्नात्कोत्तर
कॉलेज, हीरानगर, भारत

सारांश

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल में स्वर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है स्वरों के बिना संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

वैदिक काल में ही स्वरों की षडज, रिषभ, गान्धार इत्यादि संज्ञाएं प्रचार में आ गई थी। स्वरों को सामगान से पूर्व काल में ये संज्ञाएं नहीं थी साम के पूर्व यमों के नाम कृष्ठ प्रथम, द्वितीय इत्यादि ही है।

मुख्य शब्द : साम, लौकिक, स्वर, यम, वैदिक।

प्रस्तावना

ध्वनि तत्त्व के सन्दर्भ में वेद, व्याकरण और विभिन्न दर्शनों में 'स्वर' पर मुख्यरूप से तीन संदर्भों में विचार किया गया है–1. भाषा में अ, इ, उ आदि वर्णों के रूप में, 2. वैदिक साहित्य में उदात्तादि के रूप में और 3. साम–गान में क्रुष्टादि सप्तस्वरों के रूप में। सामान्य रूप से भाषा में 'स्वर' वे ध्वनियाँ हैं, जो व्यंजनादि अन्य ध्वनियों से जुड़कर वर्ण को पूरी तरह धारा की सी अखण्डता और एक तारता आ जाती है, वहीं चैतन्यशक्ति रूप नाद–विशेष स्वर है। स्वर ही व्यंजन को लचीला बनाता है। भाषा में 'अ' से 'औ' तक कुल ग्यारह स्वर कहे गए हैं। इनमें से तीन मुख्य माने गए हैं–अ, इ, उ। इन्हीं के दीर्घ रूप और परस्वर संयोग से आ, ई, ऊ तथा ए, ओ, ऐ, औ बन जाते हैं। वैदिक साहित्य में भी मुख्य स्वर तीन ही प्राप्त होते हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इनमें से ऊँचे स्वर का 'उदात्त', नीचे स्वर कसे 'अनुदात्त' और दोनों के समाहार को 'स्वरित' कहते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से 'स्वर' की उत्पत्ति 'राजृ' और 'रंज' धातु से 'स्व' एवं पदपूर्वक रंजकता उत्पन्न करने वाली ध्वनि के रूप में हुई है। 'स्व' और 'र' के साम्य से जो स्वयं शोभित होता है, वही स्वर है। बिना किसी सहायता के शोभित होने का लक्षण संगीत के 'स्वर' में पूर्णतः विद्यमान है, क्योंकि जहाँ भाषा से स्वतः शोभित होते हुए भी व्यंजन के सहयोग के बिना स्वर–अर्थ, विचार या भाव का बोध कराने में समर्थ नहीं होते, वहाँ संगीत के स्वर अन्य किसी वर्ण आदि के बिना ही भावाभिव्यक्ति में सक्षम हैं। भाषा में स्वर का कार्य वर्णों के सहयोग से भावों को अभिव्यक्त करना है, किन्तु संगीत में स्वर भाव एवं रंजकता दोनों का आधार सिद्ध होते हैं।

उदात्तादि स्वरों में केवल उच्चता–नीचता को धर्म कहा गया है, किन्तु संगीत के स्वर के लिए 'रंजकता' अनिवार्य है। 'पाठ' और 'गान' में अन्तर यही है कि 'पाठ' में उदात्तादि के रूप में उच्चता, नीचता तथा मध्यता आदि स्थानों का स्पर्शमात्र होता है, लेकिन गान के स्वरों में रक्तिप्रधान अनुरणन होता है। पाठ्य में स्वरगत रक्ति की प्रधानता होने पर वह पाठ नहीं रहता, गान में परिवर्तित हो जाता है। अनुरणन, स्निग्धता, मधुरता और रंजकता से युक्त यानी विकार–रहित चितवृत्ति को 'उपतापित' करके अपने जैसा ही बना देता है। यही स्वर की वह विलक्षणता है, जिसके कारण चित्त के द्वारा 'ब्रह्मानंद' के समान अनुभूति मानी गई है और इसी कारण संगीत में 'नादब्रह्म' की स्थापना हुई है। अभिनव गुप्त के स्वर संबंधी चिन्तन ने व्याकरण, भाषा तथा वेद आदि अन्य धाराओं में स्वर पर हुई चिन्तन की अपेक्षा संगीत में पूर्णता प्राप्त की है।

स्वर का अर्थ एवं परिभाषा

रञ्जयन्ति स्वतः स्वान्तं श्रोतृणामिति ते स्वराः।
षड्जर्षभौ च गांधारस्तथा मध्यमपञ्चमौ।।
धैवतश्त निषादोऽयमिति नामभिरीरिताः।

अर्थात् जो ध्वनियाँ अपने आप या स्वभाविक ही सुनने वालों के चित्त को आकर्षित करती है वे स्वर कहलाती है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद,– "तेषां संज्ञाः सरिगमपधनोत्यपरामताः।।" अर्थात् उन स्वरों की दूसरी संज्ञा या सूक्ष्म नाम 'सा रे ग म प ध नि' माने गए हैं। संगीत दर्पण के अनुसार– "श्रुतियों से ही षड्ज तथा ऋषभ आदि सात स्वरों का निर्माण होता

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

है। इनके दूसरे नाम सा, रे, ग, म, प, ध, नि हैं।" स्वर शब्द 'स्व' तथा 'र' के संयोग से बना है। यहाँ 'स्व' का अर्थ स्वयं और 'र' का अर्थ राजते है। 'स्वयं राजते इति' स्वरा'। अर्थात् जो स्वयं राजते हैं उनको स्वर कहते हैं। मतंग के अनुसार स्वर शब्द का अर्थ स्वतः मनोरंजन प्रदान करने वाला है।

अभिनवगुप्त के अनुसार जो स्वयं चमकता है रंजन करता है, जिसमें ध्वनि करने की क्षमता है, वह स्वर है। संगीतरत्नाकर के अनुसार श्रुति के बाद उत्पन्न होने वाला, स्निग्ध गुंजन करने वाला और श्रोताओं के मन को अपने आप रंजित करने वाला नाद स्वर कहलाता है। पार्श्वदेव के अनुसार जो नाद स्वमेव शोभित होता है वह स्वर है। सिंहभूपाल के अनुसार प्रथम आघात से जो ध्वनि आकाश में उत्पन्न होती है वह श्रुति और वही नाद जब पूर्णता को प्राप्त कर लेता है तो स्वरावस्था को प्राप्त हो जाता है। पं. रामामात्य के अनुसार श्रुति के पश्चात् तुरन्त उत्पन्न होने वाला जो अनुरणनात्मक है जो सुननेवालों के चित्त का स्वतः रंजन कर सकता है ऐसा जो स्निग्ध नाद है, वही 'स्वर' कहलाता है। संगीत दर्पण के अनुसार–

श्रुत्यनंतरभावित्वं यस्यानुणनात्मकः।
स्निग्धश्च रंजकश्चासौ स्वर इतयभिधीयते।।

अर्थात् जो नाद श्रुति उत्पन्न होने के पश्चात् तुरन्त निकलता है तथा जो प्रतिध्वनि रूप प्राप्त करके मधुर तथा रंजन करने वाला होता है उसे स्वर कहते हैं। जो नाद स्वयंमेव ही शोभित होता है तथा जिसे अन्य किसी नाद की अपेक्षा नहीं होती, उसे स्वर समझना चाहिए। आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति के अनुसार ध्वनि का जो उतार चढ़ाव संभाषण में भावों का बोध होता है, वही नियत अवधान होने पर संगीत के स्वरों का स्थान ले लेता है।

स्वर के भेद

वर्तमान काल में भारतीय संगीत के सप्तक में कुल बाहर स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इन स्वरों की अचल, कोमल और तीव्र तीन अवस्थाएं होती है। जिन स्वरों के कोमल और तीव्र कोई भेद नहीं है, ऐसे स्वरों को अचल स्वर कहा जाता है। संगीत शास्त्र के अनुसार षड्ज तथा पंचम को अचल स्वर माना गया है। इन दोनों स्वरो के कोमल या तीव्र कोई अन्य भेद नहीं है। जब मुख्य अथवा शुद्ध स्वर अपने स्थान से कुछ श्रुति नीचे उतर जाता है, तो वह कोमल कहलाता है। कोमल स्वरो को उनके नीचे आड़ी रेखा (–) लगा कर दर्शाया जाता है। वर्तमान समय में भारतीय संगीत के सप्तक में कुल चार स्वरों को इस अवस्था की प्राप्ति होती है। वर्तमान समय में भारतीय संगीत के सप्तक में कुल चारस्वरों को इस अवस्था की प्राप्ति होती है– रे, ग, ध, नि। तीव्रावस्था शुद्धावस्थासे ऊपर चढ़ने पर प्राप्त होती है। जैसे –'म' इस स्वर के ऊपर रेखा(।) का चिन्ह लगाकर इसकी तीव्रवस्था को प्रदर्शित किया जाता है। मध्यम स्वर की इस अवस्था को मध्यम तीव्र कहा जाता है। संगीत के स्वरों की सूक्षमता का वर्णन करते हुए आचार्य उत्तमराम शुक्ल कहते हैं–

ग्रन्थ तथा प्रत्यक्ष में पड़त बहुत से भेद
बिन गुरू सन् अनुभव किये भटकत अंध सखेद।।

अर्थात् ग्रन्थ और प्रत्यक्ष में बहुत भेद पड़ जाता है, इसलिए गुरू के सम्मुख अनुभव न कर लेने पर अन्धे की तरह दुखी होकर भटकना पड़ता है। संगीत के स्वरों को वास्तव में ग्रन्थ से पढ़कर नहीं सीखा जा सकता। गुरू से ही शिक्षा प्राप्त करके संगीत के स्वरों को आत्मसात किया जा सकता है। स्वर सुनने की क्रिया से संबंधित है। शुद्ध, कोमल और तीव्र स्वरों के सूक्ष्म भेद संगीत के प्रायोगिक पक्ष के ज्ञान के बिना नहीं समझे जा सकते। उपर्युक्त वर्णन के अनुसार वर्तमान समय में इन्हीं तीन प्रकार के स्वरों का व्यवहार होता है। प्राचीनों के स्थिति इनसे भिन्न थी।

स्वर साधारण

जब स्वर अपने स्थान से एक या अधिक श्रुति उत्कर्ष हो जाए और किसी अन्य स्वर की अवस्था को प्राप्त न हो, तो स्वर की इस स्थिति को स्वर साधारण कहते हैं। नाट्यशास्त्र के अनुसार जब किसी स्वर में दो स्वरों के धर्म रहते हैं, तो उसमें स्वर साधारण कहा जाता है। साधारण दो प्रकार के हैं, स्वर साधारण और जाति साधारण। जाति के अन्तर के समान जो जाति में पाया जाता है, उसको जाति साधारण कहते हैं। दूसरे को एक ग्राम में बाहुल्य से प्रयुक्त होने के कारण साधारण कहते हैं। जिस प्रकार किसी गाँव में कोई विशिष्ट जाति अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक होती है, तो वह गाँव उस विशिष्टि जाति का ही गाँव कहलाता है। आचार्य दत्तिल के अनुसार ये स्वर और जाति के उपलक्षण से दो प्रकार के बताए गए दोनों में पहला स्वर साधारण, काकली निषाद और अन्तर गान्धार होता है। पं. दामोदर के अनुसारः –"स्वर साधारण चार प्रकार के होते हैं, काकली, अन्तर, षड्ज और मध्यम साधारण।" षड्ज और निषाद इन दो स्वरों में काकली साधारण होता होता है, गान्धार और मध्यम इन दो स्वरों में मध्यम साधारण होता है। निषाद स्वर षड्ज की पहली श्रुति और ऋषभ स्वर षड्ज की अंन्तिम श्रुति का आश्रय लेता है, तक उसे षड्ज साधारण कहते हैं। रागों के आलाप में होने वाले साधारण को जाति साधारण कहते हैं। जब गांधार मध्यम की पहली श्रुति ग्रहण कर लेता है और पंचम स्वर उसी मध्यम की अंतिम श्रुति ग्रहण कर लेता है, तब गान्धार और पंचम के साथ संयोग होने से मध्यम साधारण कहलाता है।

स्प्त स्वरों का क्रमिक विकास

नारदीय शिक्षा के अनुसार स्वरों का विकास, एक तथा तीन स्वरों से क्रमशः होता रहा है। इस स्वर युक्त गान 'आर्चिक' कहलाता है, द्वय स्वर युक्त गान 'गाथिक' तथा तीन स्वरों से युक्त गान 'सामिक' कहलाया गया है।[37]

आर्चिक, गाथिक इत्यादि पर संगीत रत्नाकर में दी गई कल्लिनाथ की टीका इस प्रकार है[38]– 'यज्ञ के प्रयोगों में जब ऋचाओं को एक ही स्वर के आश्रय से गाते थे तो उस गान को आर्चिक कहते थे (यथा सा सा सा अथवा नि नि नि या रे रे रे)। यह गान हवन, मन्त्रपाठ, जप इत्यादि के लिए उपयुक्त था। गाथाएँ दो स्वरों में गाई जाती थीं। अतः उन्हें गाथिक कहते थे। (गाथा इस प्रकार होती थीः नि नि नि नि स स स स।) यह देवता या यजमान की प्रशंसा में गाई जाती थी।

तीन स्वर का गान साम से सम्बन्ध रखता है। अतः उसे सामिक कहते थे 'सामिक' शब्द का सम्बन्ध तीन स्वरों से है (इसका गान इस प्रकार होता था – ग ग रे रे स स स इत्यादि)।

इससे यह जान पड़ता है कि सामगान का प्रारम्भ पहले तीन स्वरों से हुआ। बाद में चौथे स्वर का विकास हुआ जिसका प्रयोग स्वरान्तर कहलाता है। नारदीय शिक्षा में नारद ने स्पष्ट रूप से कहा है कि – ऋक् एक स्वर का गान है, गाथा दो स्वर और साम तीन स्वर का। इसके अनन्तर उसके साथ एक और स्वर जुड़ गया और इस प्रकार चार स्वरों के प्रयोग का नाम 'स्वरान्तर' पड़ा।[39] संगीत रत्नाकार की सुधाकर टीका में सिंहभूपाल ने भी स्पष्ट कहा है कि –

''चतुः स्वरः स्वरान्तरः''

अर्थात् चौथा स्वर स्वरान्तर है अथवा चार स्वरयुक्त स्वरान्तर है। इस प्रकार सामगान में पहले केवल 3–4 स्वर थे और धीरे–धीरे पूरे सप्तक का विकास हुआ। इसका प्रमाण पुष्पसूत्र, जिसका निर्माण सामकाल में ही हुआ था और जो सामगान काएक प्रामाणिक ग्रन्थ है, में निम्नलिखित श्लोक में मिलता है। जो इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है कि बहुत ही थोड़े सामों में सात स्वरों का प्रयोग होता था–

एतैर्भावैश्च गायन्ति सर्वाः शाखाः पृथक्–पृथक्।
पंचस्वेव तु गायन्ति भूयिष्ठानि स्वरेषु तु।
सामानि षट्सु चान्यानि स्प्तसु द्वे तु कौथुमाः।
उनानामन्यथागीतिः पादानामधिकाश्च ये।।[41]

अर्थात, भिन्न–भिन्न शाखा के (सामगायक) भिनन स्वरों में (साम) गायन करते हैं। अधिकतर गान पाँच स्वरों में गाते हैं, कुछ अन्य छः स्वरों में गाते हैं, केबल दो सामों का गान ही कौथुम शाखा के अन्तर्गत सात स्वरों में किया जाता है। इस प्रकार साम में सात स्वर होने का परिचय प्राप्त होता है।

ऐसा माना जाता है कि ऋग्वेद काल में ही सात स्वरों की पहचान हो चुकी थी क्योंकि ऋग्वेद के दसवें मण्डल में निम्नलिखित मन्त्र आता है –

तदित्सूघथेमुभि चारू दीघय् गावो यच्छासन्वहुतं च घेनेवः
माता यन्मन्तुर्यूथस्ये पूर्व्यामिवास्य सप्तधातुरिज्जनः

इसमें सायणा ने वाण का अर्थ वाद्य लिया है और 'सप्तधातुः' का अर्थ निषादादि सात स्वर माना है। सामदेव में इनका धीरे–धीरे प्रायोगिक स्वरूप हमें दिखाई देता ही है, जिसक प्रमाण 'सप्तस्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः' माण्डूक्य शिक्षा की इस पंक्ति से भी मिलता है। साम गान में सप्त स्वरों के जो नाम हमें प्राप्त होते हैं, वे हैं –

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, चन्द्र, क्रुष्ट और अतिस्वार।[42]

इसमें प्रथम चार स्वरों के नाम संख्यात्मक शब्दों के द्वारा और बाद में तीन नाम वर्णनात्मक शब्दों के द्वारा व्यक्त किए गए हैं। ये दो प्रकार की संज्ञाएँ इस बात की ओर संकेत करती थीं कि पहले पहल सामगायकों की पकड़ में चार स्वर आए और इन चारों के उन्होंने अवरोही क्रम में संख्या वाचक नाम दिए – प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ। कालान्तर में जब सामगान का विकास हुआ तो गायकों की पकड़ में तीन स्वर आए जिनकी संक्षाएं हुई – क्रुष्ट, मन्द्र और अस्विार। सामगान के चार निश्चित स्वर चले आ रहे थे।

प्रयोग में अति का अर्थ 'अन्तिम व्यवस्था', 'अन्मि सीमा' से लिया जाता है। अतिस्वार में 'अति' इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है 'जहाँ स्वरण (ध्वनि) अन्तिम सीमा तक पहुँच जाता है। अतः अतिस्वर नीचे का अन्तिम स्वर है। मन्द्र और अतिस्वार के अतिरिक्त एक और स्वर मिला जिसकी संज्ञा हुई क्रष्ट। वस्तुतः क्रुष्ट, शब्द 'क्रुश' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाने से बना है। 'क्रुश' धातु का अर्थ है चिल्लाना, जोर से आवाज करना इत्यादि। सामग्राम के अभी तक जितने यम थे उनमें अधिक जोर का, अधिक ऊँचा यह यम उन्हें मिला। अतः इसका नाम पड़ा 'क्रष्ट'। इस प्रकार सामग्राम का विकास दो प्रक्रमों में हुआ। पहला वह जिसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ यमों की प्राप्ति हुई। दूसरा वह जिसमें क्रुष्ट, मन्द्र और अतिस्वार यमों की प्राप्ति हुई।[43] साम विधान ब्राह्मण, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य बृहद्देवता तथा नारदीयशिक्षा आदि ग्रन्थों में साम के सप्त स्वरों का विधान बराबर पाया जाता है। नारदीय शिक्षा का निम्नलिखित श्लोक यह बतलाता है कि भिन्न–भिन्न साम गायक भिन्न–भिन्न स्वरों का उपयोग करते थे –

(द्वि) तृतीयप्रथम क्रुष्टान् कुर्वन्त्याह्वरकाः स्वरान्।
द्वितीयाद्यांस्तु मन्द्रान्तांस्तैत्तिरीयाश्चतुरः स्वरान्।[44]

अर्थात् आह्वरक (शाखा) में (द्वितीय) तृतीय प्रथम तथा क्रष्ट स्वरों को प्रयोग करते हैं। तैत्तिरीय शाखा में द्वितीय से लेकर मन्द्र तक चार स्वरों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार वेद के अनुयायियों द्वारा गान के अन्तर्गत इन्हीं स्वरों का न्यूनाधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता रहा।

साम तथा लौकिक (गान्धर्व) स्वरों का अध्ययन

वैदिक काल में ही स्वरों की षड्ज, रिषभ, गन्धार इत्यादि संज्ञाएँ प्रचार में आ गई थी। प्रातिशाखाओं में तो इनका प्रचुर प्रयोग मिलता है किन्तु सामगान के पूर्व काल में ये संज्ञाएँ नहीं थी। साम के पूर्व यमों के नाम क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय इत्यादि ही थे। आगे चलकर, वैदिक विद्वानों ने दोनों प्रकार की संक्षाओं का प्रयोग किया है, किन्तु षड्ज, ऋषभ, इत्यादि संज्ञाओं के प्रचार होने पर भी साम गायक प्राचीन संज्ञाओं का भी प्रयोग करते थे। नारदीय शिक्षा में साम तथा लौकिक गान के स्वरों का सामंजस्य इस प्रकार स्थापित किया गया है –

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीयः स गन्धारः तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः।।
चतुर्थः षड्ज इत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः।।[45]

अर्थात् जो सोमगायकों का 'प्रथम स्वर है वह वेणु का मध्यम स्वर है, जो द्वितीय है वह वेणु का गन्धार, तृतीय स्वर वेणु का ऋषभ है, चतुर्थ षड्ज है, पंचम धैवत है षष्ठ निषाद है तथा सप्तम वेणु का पंचम स्वर है। नारदीय शिक्षा के उपर्युक्त साक्ष्य से स्पष्ट है कि क्रुष्टादि सप्त सामस्वरों का क्रम म ग रि सा ध नि तथा प इस प्रकार रहा है। गात्रवीणा पर स्वरों की स्थिति निर्दिष्ट करते समय नारदीय शिक्षा में इसी क्रम का अवलम्ब किया गया है। सायण ने साम तथा गान्धर्व के स्वरों में सामंजस्य स्थापित करते हुए निम्न मत प्रतिपादन किया है

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

– लौकिके ये निषादादयः सप्त स्वरा : प्रसिद्धाः, त एव साम्नि क्रष्टादयः सप्त स्वराः भवन्ति। तद्यथा–यो निषादयः सः क्रष्टः। धैवतः प्रथमः। पंचमो द्वितीयः। मध्यमस्तृतीयः। गान्धारश्चतुर्थः। ऋषभो मन्द्रः। षड्जोऽतिस्वार्य इति।" अर्थ है – लौकिक निषादादि स्वर ही साम के क्रष्टादि स्वर होते है। निषाद क्रष्ट है, धैवत प्रथम है, पंचम द्वितीय है, मध्यम तृतीय है, गान्धार चतुर्थ है, ऋषभ मन्द्र है तथा षड्ज अतिस्वार्य है।

डॉ. शरच्चन्द्र परांजपे के अनुसार सायण का यह प्रतिपादन शिक्षा तथा प्रतिशाखाओं के उपर्युक्त साक्ष्य से कथमपि संगत प्रतीत नहीं होता। सम्भव है कि आधुनिक सा, नि, ग, म, प, ध तथा नि को सामगान के स्वर मानकर उसके अवरोही क्रम की क्रष्ट, प्रथम आदि संज्ञाएँ उन्होंने कल्पित की हों।[46]

नारद के अनुसार सामग्राम इस प्रकार होगा –

वैदिक स्वरों का स्वरांकन	वैदिक स्वर संज्ञाएँ	ना. शि. की स्वरागणना	ना. शि. के अनुसार स्वर
7	क्रष्ट	सप्तम	प
1	प्रथम	प्रथम	प
2	द्वितीय	द्वितीय	ग
3	तृतीय	तृतीय	रे
4	चतुर्थ	चतुर्थ	सा
5	मन्द्र	पंचम	ध
6	अतिस्वार	षष्ठ	नी

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार 'नारदीय शिक्षा में स्वर क्रम हमें वक्र रूप में मिलता है किन्तु लौकिक स्वरों का स्वरूप सीधे क्रम में माननीय है। आधुनिक सामगान में प्रयुक्त कोमल 'ग' तथा कोमल 'नि' के आधार पर इस सप्तक का स्वरूप आधुनिक काफी राग के सदृश लक्षित होता है।'[47]

सामवेद के स्वरों का स्वरूप कैसा था– शिक्षा ग्रन्थों में इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया। किन्तु शताब्दियों की परम्परा से आजतक जो सामवेद का गान चला आ रहा है, उससे यही पता चलता है कि सामवेद के स्वरों का स्वरूप और स्थान वही रहा है जो भरत केसमय तक शुद्ध ग्राम के स्वरों का था। अर्थात् सामवेद के स्वर हिन्दुस्तानी संगीत के काफी और कर्नाटक संगीत के खरहरपिया के स्वरों से मिलते–जुलते हैं। संग्रहचूडामणि के उपोद्घात में अंग्रेजी में श्री ऐयंगर ने इस विषय पर जो लिखा है, उसके एक अंश का अनुवाद निम्नलिखित है –

"संगीत के प्रथम शास्त्रकार भरत और बाद के शास्त्रकार शाङ्र्गदेव ने सामवेद के स्वरों को ही शुद्ध स्वर माना है। सामवेद का गान परम्परागत रूप से आजतक वैसा ही चला आया है जैसा कि वह आदि में था। इस वेद के गान का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने से यह पता चलेगा कि ग रे सा नि ध प जो तारसथान से मध्य स्थान तक आते हैं और जिनकी संज्ञाएँ सामवेद में प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र और अतिस्वार हैं, अवरोही क्रम में है। कभी–कभी जब गान्धार स्वर लगाया जाता है तो मध्यम भी, जिसे सामवेदी क्रष्ट कहते हैं, गमक के रूप में आता है यदि ये सातों स्वर मध्य में रखे जाएँ तो उनके स्वच्प और स्थान इस प्रकार होंगे–

स	रे	ग	म	प	ध	नी
तृतीय	द्वितीय	प्रथम	क्रष्ट	अतिस्वार	मन्द्र	चतुर्थ
1	10/9	32/27	4/3	3/2	5/3	16/9

(सं. चू. म., अड्यार संस्कार पृ. 7–8)[48]

यही भरत और शाङ्र्गदेव के शुद्ध स्वरों के स्थान थे। सम्भवतः यही सामवेद का शुद्ध ग्राम था। आधुनिक संगीत के संज्ञाओं में हम कहें तो यह कहना पड़ेगा कि सामवेद का गन्धार निषाद कोमल था, शेष पाँच स्वर शुद्ध थे। यह ग्राम काफी से कुछ मिलता–जुलता है। काफी का ऋषम, गान्धार और निषाद इसके ऋषभ, गान्धार और निषाद से एक श्रुति ऊँचे हैं। भारतीय संगीत में यह शुद्ध ग्राम सामवेद के काल से शाङ्र्गदेव के काल तक चला आता रहा जैसा कि श्री ऐयंगर ने सिद्ध किया है। श्रुतियों की दृष्टि से ऊपर से ग्राम में स, म और प चतुःश्रुतिक हैं, ऋषम और धैवत त्रिश्रुतिक हैं और गन्धार व निषाद दो श्रुतिक हैं। ये सामवेदियों के प्रकृत स्वर थे।[49]

भरत (200 से 400 ई. पूर्व के मध्य) के स्वर

भरत के नाट्य शास्त्र तक सप्त स्वरों का पूर्ण विकास हो चुका था। भरत ने नाट्य शास्त्र के 28वें अध्याय में स्वर पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। इन्होंने सबसे पहले स्वर का, फिर ग्राम और फिर श्रुति का विवरण दिया है, जबकि अन्य ग्रन्थकारों ने पहले श्रुति, फिर स्वर और अन्त में ग्राम के विषय को लिया है। भरत ने सात शुद्ध स्वर – षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद बताए हैं। जिन्हें परवर्ती ग्रन्थकारों ने शुद्ध स्वर माना है। सात स्वरों की शुद्धावस्था अपनी अन्तिम श्रुतियों पर है या अपनी–अपनी श्रुतियों के आरम्भ में है, इस सम्बन्ध में भरत ने स्पष्ट रूप से कोई उल्लेख नहीं किया है। लेकिन इन्होंने दो साधारण स्वरों का अर्थात् 'अन्तर गन्धार' व 'काकली निषाद' का प्रयोग किया

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

है जिससे अनुमान लगा सकते हैं कि इनके सातों स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर रहें होंगे क्योंकि भरत ने साधारण स्वरों की स्थिति को 'द्वि–श्रुत्युत्कर्ष' के विधान से समझाया है यानि इन दो नए स्वरों का स्थान गन्धार और मध्यम तथा निषाद और षड्ज के बीज में आता है। स्वर साधारण विधि के अन्तर्गत गन्धार तथा निषाद की द्विश्रुत्युत्कर्ष का विधान भरत ने कहा है। इससे गन्धार, मध्यम के क्षेत्र में और निषाद षड्ज के क्षेत्र में आ जाता है। परन्तु ये नए स्वर मध्यम और षड्ज को कथमपि क्षति नहीं पहुँचाते, यथा –

श्रुति संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
स्वरनाम का,नि		सा		रे			ग		अंग		म		

श्रुति संख्या	14	15	16	17	18	19	20	21	22
स्वर नाम			प				ध		नी

इस श्रुति रचना में प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर होने से साधारण विधि के अन्तर्गत गन्धार तथा निषाद के दो स्वर उत्कर्ष के लिए अवकाश प्राप्त है। गन्धार, जो नौवीं श्रुति पर, दो श्रुति के उत्कर्ष से मध्यम के स्थान को क्षति ना पहुँचाते हुए उसकी प्रथम दो श्रुतियों को ग्रहण कर सकता है तथा गन्धार और मध्यम दोनों के ठीक मध्यवर्ती होने के कारण अन्तरस्वरता को यथार्थ रूप से प्राप्त कर सकता है। निषाद के सम्बन्ध में भी यह प्रक्रिया चरितार्थ होती है।

किन्तु यदि हम स्वरों की स्थिति अपनी प्रथम श्रुति पर मान लें तो स्वर रचना इस प्रकार हो जाएगी –

श्रुति संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13
स्वरनाम	सा			रे			ग		म				

श्रुति संख्या	14	15	16	17	18	19	20	21	22
स्वर नाम प					ध			नी	

शाङ्गर्देव (1210 ई. से 1247 ई) के स्वर

शाङ्गर्देव ने 22 श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वर भरत मुनि की तरह ही विवेचित किए हैं। शाङ्गर्देव के षड्जादि शुद्ध स्वर क्रमशः 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 श्रुतियों के अन्तर पर स्थित है। यही ऐसे पहले ग्रन्थकार हुए जिन्होंने स्वरों के लिए शुद्ध तथा विकृत संज्ञा दी है। फलस्वरूप इन्होंने 7 शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त 12 विकृत स्वरों का उल्लेख किया है। इनके 12 विकृत स्वरों के नाम इस प्रकार हैं –

(1) च्युत सा, (2) अच्युत सा, (3) चतुःश्रति रे, (4) साधारण ग, (5) अन्तर ग, (6) च्युत म, (7) अच्युत म, (8) त्रिश्रुतिक प, (9) चतुःश्रुति प, (10) चतुःश्रुति ध, (11) कैशिक नी, (12) काकली नी।

शाङ्गर्देव के इन 12 विकृत स्वरों में यद्यपि नामभेद तो आवश्य है किन्तु स्थान भेद की दृष्टि से देखें तो कुछ में अन्तर दिखाई नहीं देता। जैसे उनके अच्युत सा तथा अच्युत म, ये दोनों ही स्वर शुद्ध षड्ज और शुद्ध मध्यम हैं। वास्तव में यदि भरत के स्वरों की ओर भलीभाँति देखा जाए तो यह बिल्कुल स्पष्ट होगा कि पं. शाङ्गर्देव द्वारा कथित 12 विकृत स्वरों में भरतोक्त स्वरों का ही निदर्शन है। अन्तर–काकली, स्वरों का तो स्पष्ट उल्लेख नाट्य–शास्त्र में मिलता ही है, इसके अतिरिक्त भरत ने त्रिश्रुतिक पंचम एवं चतुःश्रुतिक धैवत को भी मध्यम ग्राम में स्थान दिया, लेकिन उनका अलग से उल्लेख नहीं किया है। इसी प्रकार साधारण अवस्था का वर्णन करते हुए अन्तर गन्धार और काकली निषाद के अतिरिक्त षड्ज साधारण और मध्यम साधारण भी कहा है, जिसमें कैशिक निषाद व च्युत षड्ज (या द्विश्रुति षड्ज) तथा साधारण गन्धार और च्युत मध्यम (या द्विश्रुति मध्यम) प्राप्ति हो जाती है। इस अवस्था के परिणामस्वरूप चतुःश्रुति ऋिषभ तथा चतुःश्रुति धैवत भी स्वतः ही प्राप्त हो जाते है।[49]

दक्षिण के ग्रन्थकार

रामामात्य (16वीं शती का उत्तरार्ध) के स्वर

संगीत रत्नाकर के बाद मुख्य उपलब्ध ग्रन्थों में दक्षिण के रामामात्यकृत 'स्वरमेलकलानिधि' सबसे प्राचीनतम है। इसकी गणना दक्षिणात्य पद्धति के आधारभूत ग्रन्थों में की जाती है। शुद्ध स्वरों के विषय में इन्होंने प्राचीन परम्परा का ही अनुसरण किया है। उनके कथनानुसार 4, 7, 9, 13, 17, 20, 22 संख्या श्रुतियों पर क्रमशः शुद्ध स्वर स्थापित हैं। (इन्होंने भी भरत के समान श्रुतियों के नाम नहीं दिए हैं) इन्होंने सात ही विकृत स्वर बताए हैं। जब शाङ्गर्देव ने 12 विकृत भेद विवेचति किए हैं। इसके लिए वे कहते हैं कि केवल लक्षमण की दृष्टि से तो विकृत स्वर निश्चित ही 12 होंगे परन्तु जिनका स्थान शुद्ध स्वरों के स्थान से भिन्न हो वही वास्तव में विकृत है। अतः रामामात्य के समय में स्वरों की कुल संख्या 7. 12 त्र 19 से 7. 7 त्र 14 रह गई। रामामात्य विकृत स्वरों के वर्णन में कहते हैं कि – '' जब कोई स्वर अपनी आधार श्रुति को छोड़कर विचलित हो जाता है, तो विकृत समझा जाने लगता है –

आधार श्रुति संत्यागात ध्वनिभेदः प्रकीर्तितः।[50]

इनके सात विकृत स्वरों के नाम व स्थान क्रमशः इस प्रकार हैं – 1. च्युत सा, 2. च्युत म, 3. च्युत प, 4, साधारण ग, 5. अन्तर ग, 6. कैशिक नी, 7. काकली नी, श्रुतियों पर इनका ध्यान क्रमशः इस प्रकार होगा –

श्रुति संख्या – 3, 12, 16, 10, 11, 1, 2 श्रुति पर स्थित होगा।

श्री कण्ठकृत ''रस कौमुदी' में भी यही 7 स्वर विवेचित हैं। उन्होंने च्युत के सथान पर पत या उपत्य संज्ञा प्रयुक्त की है।

सोमनाथ (17वीं शती का पूर्वध) के स्वर

रामामात्य के बाद सोमनाथ के 'राग विरोध' (1609 ई.) ग्रन्थ में स्वरों का उल्लेख मिलता है। इन्होंने भी सात शुद्ध स्वर अपने पूर्वजों की भाँति ही 4, 7, 9, 13, 17, 20, 22 श्रुतियों पर बताए हैं।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

देशी रागों में सोमनाथ ने इन तीव्रादि स्वर नामों का प्रयोग किया है। इस प्रकार इन्होंने 15 विकृत स्वर नाम दिए है –

1. तीव्र रे, 2, तीव्रतर रे, 3. तीव्रतम रे, 4. साधारण ग, 5. अन्तर ग, 6. मृदु म, 7. मृदु प, 8. तीव्र ध, 9. तीव्रतरध, 10. तीव्रतम ध, 11. कैशिक नी, 12. काकली नी, 13. तीव्रतम ग, 14. तीव्रतम म, 15. मृदु सा।

इनमें से पाँ स्वर नाम ऐसे है – 1. तीव्रतर रे, शुद्ध ग में मिल जाता है। तीव्रतम रे साधारण ग में, तीव्रतर ध शुद्ध नी में, तीव्रतम ध कैशिक नी में तथा तीव्रतम ग शुद्ध 'म' में मिल जाता है। इसलिए 15–5–10 विकृत स्वर हुए।[51]

व्यंकटमखी (17वीं शती के पूर्वाधी) के स्वर

व्यंकटमखी कृत 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' 'राग विबोध' के तीस वर्ष बाद लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें भी भारत तथा शाड्गदेव की ही श्रुतियों की विभाजन–व्यवस्था 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' ... अपनाई गई है। इन्होंने शुद्ध और विकृत दोनों को मिलाकर कुल 12 स्वर माने हैं। जिनमें सात शुद्ध तथा पाँच विकृत हैं। साधारण ग, अन्तर ग, वराली म, कैशिक नी, काकली नी– ये पाँच इनके विकृत स्वर हैं। साधारण ग और कैशिक नी की स्थिति एक–एक श्रुति के उत्कर्ष से मानी है लेकिन अन्तर ग वक काकली नी के विषय में पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों की अपेक्षा कुछ भिन्नता दिखाई देती है। इनके अनुसार जब गन्धार मध्यम की दूसरी और तीसरी श्रुति लेता है तो अन्तर गन्धार होता है। इस अवस्था में मध्यम चतु–श्रुति होते हुए भी एक श्रुति रह जाता है यही अवस्था निषाद के साथ है।[51] इस प्रकार ये दोनों स्वर (अन्तर ग और काकली नी) गन्धार और निषाद की तीन–तीन श्रुतियों के बाद आते हैं।

उत्तर के ग्रन्थकार

अहोबल (17वीं शती का पूर्वार्ध) के स्वर

उत्तर के ग्रन्थकारों में पं. अहोबल का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने 22 श्रुतियाँ मानते हुए शुद्ध स्वरों का विभाजन 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' के आधार पर ही किया है यानि 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 श्रुत्यन्तर पर किया है। 7 शुद्ध स्वर अपनी अन्तम श्रुति पर ही माने हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 22 विकृत स्वर नामों का प्रयोग किया है। विकृत स्वरों के विषय में कहते हैं कि जब कोई स्वर एक श्रुति आगे जाता है तो तीव्र, दो श्रुति आगे जाने पर तीव्रतर, तीन श्रुति आगे आने पर तीव्रतम तथा चार श्रुति आगे जाने पर अतितीव्रतम हो जाता है। इसी प्रकार एक श्रुति उतरने पर कोमल और दो श्रुति उतरने पर 'पूर्व' हो जाता है। इस प्रकार 22 विकृत स्वर नामों का उल्लेख किया है लेकिन रागों पर विवरण देते समय केवल 12 स्वर से अधिक स्वर नामों का प्रयोग नहीं किया है क्योंकि इनके विकृत स्वरों के नाम तो अलग–अलग हैं लेकिन स्थान वही है, जैसे इनका शुद्ध रे ही पूर्व ग है, कोल ग ही तीव्र रे है, मृदु म तीव्रतम ग है, मृदु प तीव्रतम म है, कोमल नी तीव्र ध है तथा शुद्ध नी ही तीव्र–तर ध कहा है।

रागों का वर्ण करते समय इन दस स्वर नामों को छोड़ दिया है, – पूर्व रे, तीव्र रे, तीव्रतर ग, तीव्रतम ग, तीव्र म, तीव्रतम म, पूर्व ध, तीव्र ध, तीव्रतर नी, तीव्रतम नी।[52] इनके परवर्ती ग्रन्थकार श्री निवास, हृदय नारायण देव, लोचन ने अहोबल का ही अनुसरण किया है।

भावभट्ट (17वीं शती का अन्त, 18वीं शती का आरम्भ) के स्वर

इसके बाद भावट्ट के तीन ग्रन्थ, अनूप संगीत विलास, अनूपांकुश, अनूप संगीत रत्नाकर मिलते हैं। अनूपसंगीत विलास का सम्पूर्ण स्वराध्याय 'संगीत रत्नाकर' से लिया गया प्रतीत होता है। इन्होंने 22 श्रुतियों पर 42 विकृत स्वर बताए हैं रे के दो, ग के तीन, म के छः, ध के तीन,उ नीं के चार 'तदुपरान्त नी के तीन, ध के चार, म के तीन भेद मिलाकर कुछ विकृत स्वरों के 42 भेद हुए।[52] लेकिन राग विवरण करते समय इन स्वरों के विषय में कुछ नहीं कहा है। व्यवहार में केवल 12 स्वर ही प्रयोग किए हैं।

मध्य काल के अन्तर्गत उत्तरी और दक्षिणी संगत के स्वरों को देखने से पता चलता है कि दक्षिण के संगीत के शास्त्रकार जिसे शुद्ध रे, व ध स्वीकारते हैं वे उत्तर भारतीय द्वारा कोमल रे व ध कहे गए हैं। दक्षिणी संगीत के चतुःश्रुति रे व ध हिन्दुस्तानी शुद्ध रे, ध हैं। स, म, प दोनों पद्धतियों में समान है। दक्षिण का प्रति म, उत्तर पद्धति का तीव्र म है। दक्षिणी शुद्ध गन्धार, निषार उत्तरी शुद्ध रे, ध है। इसलिए उत्तरी गन्धार और निषाद क्रमशः 11वीं और 2 री श्रुति पर है जहाँ दक्षिणी अन्तर गन्धार तथा काकली निषाद की स्थिति है। दोनों पद्धतियों के शुद्ध व विकृत स्वर इस प्रकार और सरलता से समझे जा सकते हैं–

स्वर संख्या	श्रुति संख्या	दक्षिणी स्वर	उत्तरी स्वर
1.	1	षड्ज	षड्ज
2.	3	शुद्ध रे	कोमल रे
3.	5	चतुश्रुति रे या शुद्ध ग	शुद्ध रे
4.	7	षट्श्रुति रे या साधारण ग	कोमल ग
5.	8	अन्तर ग	शुद्ध ग
6.	10	शुद्ध ग	शुद्ध म
7.	12	प्रति म	तीव्र म
8.	14	प	प
9.	16	शुद्ध ध	कोमल ध
10.	18	चतुश्रुति ध या शुद्ध नी	शुद्ध ध
11.	20	षट्श्रुति ध या कैशिक नी	कोमल नी
12.	21	काकली नी	शुद्ध नी

इसका तात्पर्य यह निकलता है कि दक्षिण पद्धति में शुद्ध स्वर अपनी सबसे नीची अवस्था में हैं तथा विकृत होने पर वे ऊपर आते हैं जबकि उत्तरी पद्धति में विकृत स्वर नीची अवस्था में है और शुद्ध स्वर के ऊपर आने पर वे तीव्र कहलाते हैं जैसे तीव्र मध्यम[53] अत विकृत स्वर शुद्ध स्वर के दोनों ओर रहते हैं।

इस प्रकार स्वरों के क्रमिक विकास में समय–समय पर परिवर्तन हमें दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक युग में य़द्यपि एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ ही मानी गई हैं और उनका विभाजन भी 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 के श्रुत्यन्तरों पर ही है परन्तु सबसे बड़ा परिवर्तन जो हमें दिखाई देता है वह है, स्वरों का स्थान। हिन्दुस्तानी संगीत में स्वरों की शुद्ध अवस्था उनकी पहली श्रुति पर मानी गई है। यह बात सबसे पहले 'लक्ष्य संगीत' में कही गई है।[54] और इसके हिसाब से विकृत स्वरों की स्थिति बताई गई है। यानि आज 1ली श्रुति पर सा, 5वीं पर शुद्ध दे, 8वीं पर शुद्ध ग, 10वीं पर म, 14वीं पर प, 18वीं पर शुद्ध ध, तथा 21वीं श्रुति पर शुद्ध निषाद स्थित है। विकृत स्वरों में कोमल रे 3री श्रुति पर, कोमल ग 7वीं पर, तीव्र म 12वीं पर, कोमल ध 16वीं पर तथा कोमल नी 20वीं पर श्रुति माना गया है। तारों पर इनकी स्थिति पर प्रकार होगी –

तार	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
स्वर	सा				रे			ग		म		
तार	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22		
स्वर		प				ध			नी			

इस आधार पर हम देखते हैं कि भले ही प्राचीन और आधुनिक स्वरों में श्रुतियों का विभाजन समान है तथापि स्वरों की परस्पर दूरी में अन्तर आ गया है। भत के अनुसार षड्ज से तीसरी श्रुति पर ऋषभ है जबकि आज षड्ज से चौथी श्रुति पर ऋषभ है। इसी प्रकार भरत के अनुसार ऋषभ से दूसरी श्रुति पर गान्धार है जबकि अपनी प्रथम श्रुति पर स्वर मानने से ऋषभ से तीसरी श्रुति पर गान्धार बैठता है। इस प्रकार अन्य स्वरों में भी पर्याप्त भिन्नता आ गई है।

हम देखते हैं कि प्राचीन से मध्ययुग तक किसी भी ग्रन्थकार ने षड्जादि स्वरों को उसकी प्रथम श्रुति में न रखकर अन्तिम श्रुति में ही रखा है, जो उचित भी है। विदेशी विचारकों का अनुसरण कर श्री शौरीन्द्रमोहन टैगोर, पं. विष्णुनारायण भातखण्डे आदि ने प्रथम श्रुति पर ही स्वर का स्थापन किया एवं उससे आगे की श्रुतियों को उस स्वर विशेष की श्रुति गिना तथा सभी श्रुतियों को समान प्रमाण का माना। षड्जादि को प्रथम श्रुति पर स्थित करने के विचार का स्रोत पाश्चात्य संगीत रहा है। यूरोपीय विद्वानों ने षड्ज को 1 माना एवं उससे दुगुना ऊँचा षड्ज को 2 एवं उपस्वर (overtones) के आधार पर अन्य स्वरों को खोज निकाला। यूरोपीय विद्वानों का नाम यहाँ इसलि लिया गया क्योंकि भारतय संगीत के लक्ष्य पर विचार इन्होंने ही प्रारम्भ किया था। श्री टैगोर के ग्रन्थ 'Hindi Music' में एक लेख J.D. Paterson का है जिसमें उन्होंने ग्रामों के वर्णन के समय षड्ज से आगे की तीन श्रुतियों को षड्ज की श्रुति माना है।[55]

आचार्य बृहस्पति, प्रो. रामकृष्ण कवि इत्यादि चिन्तकों ने भातखण्डे जी के 'प्रथम श्रुति पर स्वरों की मान्यता का खण्डन किया है। बृहस्पति जी के अनुसार – "यदि प्रथम श्रुति पर 'षड्ज' माना जाए, तो पाँचवीं श्रुति पर भातखण्डे जी का शुद्ध ऋषभ ब्रह्मा को भी न मिलेगा, क्योंकि समस्त श्रुतियाँ समान नहीं है।[56]

आज स्वरों को प्रथम श्रुति पर मानने से स्वर संवाद की दृष्टि से कुछ दोष आए हैं, यथा –

1. आधुनिक काल में श्रुति स्वर विभाजन में मध्यम तथा धैवत के बीच आठ श्रुतियों का अन्तर है। भरत के ग्राम में षड्ज गान्धार का अन्तर पाँच श्रुतियों का है। मध्यम के बाद तक पंचम की चार और धैवत की तीन कुल सात ही श्रुतियाँ हैं। अब यदि मध्यम को षड्ज मानें तो धैवत उसका गान्धार नहीं हो सकेगा।
2. इस अवस्था में गान्धार और धैवत में षड्ज मध्यम का अभाव है क्योंकि गान्धार व धैवत का अन्तर यहाँ दस श्रुतियों का हो गया है जबकि इसे नौ श्रुतियों का होना चाहिए।
3. प्रथम श्रुति पर स्वर मानने से ऋषभ पंचम में संवाद स्वतः ही हो जाता है। इससे मध्यम ग्रामीण पंचम की प्राप्ति का उपाय नष्ट हो गया।

पूर्व लिखित ग्रन्थकारों के शुद्ध और विकृत स्वर अग्रलिखित तालिका से और स्प्ष्ट हो जाएँगे।

श्रुति राम	श्रुति संख्या	भरत		शाङ्र्गदेव	रामामात्य	नीलकण्ड	सोमनाथ	व्यंक्टमखी	अहोवल	भारतखण्डे के स्वर
		शुद्ध स्वर	विकृत स्वर							
तीव्र	1			कैशिक नी	कौशिक नी	कैशिक नी	तीव्रतम ध	कैशिक नी	कैशिक नी	शुद्ध सा
कुमुद्वती	2		का. नी	काकली नी	काकली नी	काकली नी	काकली नी		तीव्रतर नी	
मंदा	3			च्युत सा	च्युत सा	पत्य सा	मृदु सा	काकली नी	तीव्रतम नी	कोमल रे
छंदोवती	4	सा		अच्युत सा						

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

दयावती	5								पूर्व रि	शुद्ध रे
रंजनी	6								कोमल रि	
रक्तिका	7	रे		चतुः					पूर्व ग	कोमल ग,
रौद्री	8			श्रुति रे			तीव्र रे	कोमल ग,	तीव्र रि	शुद्ध ग
क्रोधा	9	ग					तीव्रतर रे		तीव्रतर रि	
वज्रिका	10			साधारण ग	साधारण ग	साधारण ग	तीव्रतम रे	साधारण ग	तीव्र ग	शुद्ध म
प्रसारिणी	11		अन्तर ग	अन्तर ग	अन्तर ग	अन्तर ग	अन्तर ग		तीव्रतर ग	
प्रीति	12			च्युत म	च्युत म	पत्य म	मृदु म	अन्तर ग	तीव्रतम ग, मृदु म	तीव्र म
मार्जनी	13	म		अच्युत म			तीव्रतम ग		अतितीव्रतम ग	
क्षिति	14								तीव्र म	प
रक्ता	15								तीव्रतम म	
संदीपनी	16			त्रिश्रुति प	च्युत प	पत्य प	तीव्रतम म, मृदु प	वराली म	मृदु प तीव्रतम प	कोमल ध
आलापिनी	17	प		चतुश्रति प						
मदन्ती	18								पूर्व ध	
रोहिणी	19								कोमल ध	शुद्ध ध
सम्या	20	ध		चतुश्रति ध					पूर्व नी	कोमल नी
उग्रा	21						तीव्र ध		कोमल नी, तीव्र ध	शुद्ध नी
क्षोभिणी	22	नी					तीव्रतर ध		तीव्रतर ध	

अध्ययन का उद्देश्य

1. साम तथा लौकिक स्वर का परिचय
2. स्वरों के अध्ययन द्वारा स्वरों का ज्ञान जन साधारण तक पहुँचाना
3. संगीत में स्वरों का महत्व
4. सम व लौकिक संगीत में स्वरों की भूमिका

साहित्यवलोकन

शारंगदेव के अनुसार

"तेष संज्ञाः सरिगमपधनोत्यपराभता।"

अर्थात् स्वरों की दूसरी संज्ञा तथा नाम स रे ग म प ध नि माने गए है।

संगीत दर्पण के अनुसार श्रुतियों से ही षड्ज तथा ऋषभ आदि सात स्वरों का निर्माण होता है।

निष्कर्ष

अतः संपेक्ष में कहा जा सकता है कि स्वर वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अलग–अलग कालों से अलग अलग नामों से होते हुए अपने शुद्ध तथा विकृत रूप में पूर्ण विद्यमान है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. *ध्वनि और संगीत, प्रो. ललितकिशोर सिंह, लोकोदय ग्रन्थमाला, भातीय ज्ञानपीठ, 1971।*
2. *भारतीय संगीत का इतिहास, ठाकुर जयदेव सिंह विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, 1994।*
3. *वैदिक परम्परा में सामगान, श्री राज्येश्वर मित्र, मदन लाल व्यास, आनन्द प्रकाशन संस्थान वाराणसी, 1982।*
4. *संगीत विशारद, बसन्त संगीत कार्यालय, हाथरस 1963।*
5. *संगीत शास्त्र, के. वासुदेव शास्त्री, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला, 1968।*
6. *भारतीय संगीत का इतिहास प्रो. श्रीधर शरच्चन्द्र परांजपे, चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ 1969।*
7. *सहसरस, डॉ. प्रेमलता शर्मा, संगीत नाटक एकेडेमी, 1972।*
8. *A History of Indian Music day Swami Prajananda Vol. 1, Published by Swami Adananda, Rama Krishna Vedamata Maths Calcutta-6, 1963.*
9. *संगीत रत्नावली, अशोक कुमार 'यमन' अभिषेक पब्लिकेशन्स चण्डीगढ़–2008।*
10. *स्वर और राग, परिभाषिक संज्ञाओं के परिप्रेक्ष्य में डॉ. रेनु जैन, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स*